विषय सूचिका

चित्र सूचि

डाक द्वारा मंगाने वाले ७५ न० पै० का मनिआर्डर भेजें पता साफ पूरा लि

शान्ति के अग्रदूत श्री महावीर भगवान

सहारनपुर का घटनापूर्ण ऐतिहासिक श्री दि० जैन मन्दिर

जिसको अन्तिम मुगल बादशाह ने मस्जिद के स्थान पर सरकारी लागत से बनवाया और जिसकी खुदाई से मनोकामनायें पूर्ण करने वाली भगवान महावीर की चौथे काल का प्रतिबिम्ब निकला जो वाञ्छित फल दायक है। विस्तारपूर्वक रोचक विवरण देखने के लिये देखिये —

(१) अहिंसा वाणी वर्ष १२ पृष्ठ १७७ (२) सन्मति सन्देश (मई १९६०) पृष्ठ ११ (३) Voice of Ahinsa, Vol XII, Page 92

प्रस्तावना

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

जैसे हर जीव के लिये खाना पीना और स्वास लेना जरूरी है, वैसे ही ग्रहस्थी के लिये पाप भार से बचने के लिये (१) देवपूजा-दर्शन (२) गुरु उपासना (३) स्वाध्याय (४) संयम (५) तप और (६) दान प्रतिदिन करना जरूरी है, इसीलिये इनको षट आवश्यक अर्थात् दैनिक धार्मिक कर्त्तव्य कहते हैं। सम्यग्दर्शन (सच्ची श्रद्धा) ज्ञान और चरित्र ३ रत्न (रत्न त्रय) अवनाशीक सुखों का स्थान मोक्ष (कर्मों से छुटकारा) प्राप्त करने का मात्र एक उपाय है और इस रत्नत्रय की प्राप्ति का कारण ६ आवश्यक हैं, जैसा कि १६ कारण पूजा में कहा है—

षट आवश्यक नित्य जो साध।
सो ही रत्न त्रय आराधे॥

६ आवश्यक साधने से जितने अंशों में शुद्ध भाव होंगे

कर्मों की निर्जरा (नाश) और जितने अंशा म शुभ भाव होंगे पुण्य बन्ध होकर ससारी सुख बिना मागे आप से आप मिल जाते हैं। खान पीन और भोग तो पशु भी करते हैं इसीलिये यह सत्य है कि धम करने से हा मुक्ति मिलती है और इसी से ससारी सुख प्राप्त होते हैं। धम के बिना मनुष्य पशु क समान है।

परन्तु आज हम धन, पदवी और यश की अधिक से अधिक प्राप्ति में जुटे हुये हैं और न मिलने पर हिंसा, झूट आदि महापापों के बल पर अधिक परिश्रम करते हैं और यह विश्वास कर बैठे हैं कि इस पचम काल में मोक्ष नहीं तो धम करन से क्या लाभ ?

पचमकाल २१ हजार वष का है जिसके तीन २ हजार के सात भाग हैं पहले भाग मे ६१, दूसरे में ३१ तीसरे में १६, चौथे मे ८, पांचवे में ४, छटे में २ और सातवें भाग म १, इस प्रकार समस्त पचम काल में १२३ मनुष्य यहा से विदेह क्षेत्र मे अवश्य मनुष्य जन्म धारण करके उसी भव से मोक्ष नियम म जायेंगे। हम बडे भाग्यशाली हैं जो पहले भाग म मनुष्य जन्म पाया। धार्मिक क्रियाओं से हमें अपन परिणाम इतन शुद्ध कर लेने चाहियें कि ६१ चरम शरीरी महापुरुषों म हमारा नम्बर जरूर आ जाये, वर्ना याद रक्खो कि मनुष्य जीवन

सम्पूर्ण आयु, निरोग शरीर आय खण्ड, कदाचित् बार बार नहीं मिलते। करोडो जीव ऐसे हैं जि हें मनुष्य जन्म तो क्या पशु-तिर्यंच काय भी अनादि काल से आज तक एक बार भी प्राप्त नहीं हुई। महा दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर भी धम जैसी भव २ सुखदायी कमाई नहीं की तो नियम से हमें नक मे भी अधिक दुखदाई निगोद जाना पडेगा कि जहा से फिर निकलना इतना ही कठिन है कि जितना भडभूजे की भट्टी से अनगिनत चनो में से कभी अचानक एक आध चने का तिडक कर बाहर निकल पडना।

अपन दोष न देखने वाले प्रमादी काल दोष कह कर यह भ्रम भी करने लगते हैं कि पचम काल मे धम का चमत्कार नहीं। धम से दुखी हृदय को तुरन्त शान्ति मिलती ही है इस से अधिक क्या चमत्कार? यदि ससारिक इच्छाओ की शीघ्र पूर्ति को ही चमत्कार माना जावे तो इतिहास साक्षी है कि श्रद्धा सहित विधि पूर्वक धम क्रियाओं से इस पचम काल मे भी वाछित फल तुरन्त प्राप्त होते हैं। क्या श्री कुन्द कुन्द आचाय ने विदेह क्षेत्र जाकर तीथङ्कर सीमन्धर जी के साक्षात् दशन इसी पचम काल में नहीं किये? क्या समन्त भद्र आचाय की २४ तीथङ्कर वन्दना से

श्री चन्द्र प्रभु भगवान का प्रतिबिम्ब इसी पंचम काल मे प्रगट नहीं हुआ ? क्या जिनराज चितवन से आचार्य वादिराज का महा भयानक कुष्ट रोग रात की रात में इसी पंचम काल मे नष्ट नहीं हुआ ? क्या ४८ मजबूत तालो समेत ४८ काल कोठडियों में लोहे की जंजीरो से जकडे हुये श्री मानतुङ्ग आचार्य प्रथम तिर्थङ्कर श्री ऋषभ स्मरण से इसी पंचम काल में आप से आप मुक्त नहीं हुये ? यह तो २०-२५ साल पीछे आखों देखा सत्य है कि चरित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर के आत्म ध्यान समय भयानक सर्प ने उनके शरीर पर लीलायें करके अपनी भक्ति प्रगट करी। साधु और मुनियों की बात छोडिये। धनञ्जय एक साधारण श्रावक थे कि जिनकी अरहत पूजा से उनका मरा हुआ समझा जाने वाला पुत्र इसी पंचम काल में जीवित हो गया। पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी की कथा अनुसार उन के अजैन अव्रती पिता को भयानक जंगल में णमोकार मंत्र जपने पर शेर रास्ता काटकर दूसरी तरफ चल दिया। मुश्किल से २५० वर्ष भी नहीं हुये योधराज मन्त्री को महाराजा भरतपुर की भरी हुई तोप के एक दो नहीं बल्कि तीन बार भी गोले वीर-भक्ति के कारण उनका बाल बाका न कर सके। बहुत से बल जोतने पर भी महावीर रथ न चल

पाया। अधिक परिश्रम से बीसो रथ टूट गये परन्तु ग्वाले के भक्ति पूर्वक हाथ लगाने से रथ तुरन्त चल पड़ा। अधिक कहां तक लिखें उच्च कोटि के अजैन ऐतिहासिक विद्वानों के पूरे हवालों सहित विस्तार पूर्वक पंचम काल की ऐसी सैकड़ो ऐतिहासिक घटनाओं को जानने के लिये हमारा लिखा हुआं ६२८ पृष्ठ का सचित्र "शान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान महावीर" का अध्याय 'जैन धर्म और भारत का इतिहास' देखिये। जैन तो जैन, अजैन सम्राट तक जैन धर्म के इसी पंचम काल के चमत्कारों से प्रभावित हुये बिना नहीं रहे। गंगा वंशी सम्राट श्री अविनीत का तीन तरफ से भयानक शत्रु की फौज ने घेर लिया चौथी तरफ अपार जल भरा दरिया था। वह बहुत वीरता से लड़ा परन्तु इसकी मुठ्ठी भर फौज टिड्डी दल सेना से कब तक लड़ती? सम्राट को यह विश्वास था कि जिनेन्द्र भगवान की शरण लेने पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती उसने जिनेन्द्र भगवान के प्रतिबिम्ब को आदर सहित अपने सिर पर रखकर अथाह जल में छलांग मार दी और अपनी फौज को भी दरिया में कूदने की आज्ञा दी। शत्रु देखता रह गया कि एक अजैन सम्राट जिन बिम्ब के सहारे अपनी सेना सहित अथाह जल चीरता हुआ बिना किसी जहाज के दरिया

पार कर चुका[1]। विष्णु धम अनुयाई सम्राट विष्णुवर्धन ने जैन धर्म विरोधी होने पर भी पार्श्वनाथ का मन्दिर वनवाया और घोषणा की कि "युद्धों मे विजय और पुत्र रत्न दोनो की प्राप्ति मुझे श्री पाश्वनाथ का मन्दिर बनवाने के पु य फल से हुई, मैं तो श्री पाश्वनाथ को विजया पाश्वनाथ भगवान स्वोकार करता हूँ"[2]। "कद्म वशी ब्राह्मण सम्राट श्री रवि वर्मा तो यहा तक प्रभावित थे कि उनकी राज आज्ञा थी –

'महाराजा रवि वेर्मा की आज्ञानुसार जिनेन्द्र भगवान की प्रभावना के लिये हर साल कार्तिक की अठाइयों का पव निरन्तर ८ दिन तक सरकारी मालगुजारी स मनाया जावे और सरकारी खच पर ही चतुर्मास के चारो महीनों म जन साधुओं का वयाजत हुआ करे। जनता को भी जिनेन्द्र भगवान की निरन्तर पूजा करनी चाहिये क्योंकि जहाँ सदव जिनेन्द्र भगवान की पूजा विश्वास पूवक की जाती है वहाँ धनवृद्धि होती है देश आपत्तियों और बीमारियों के भय से मुक्त रहता है और वहां के शासन करने वालों का यश और शक्ति बढ़ती है[3]।

कुछ की धारणा है कि धम पालन बडा कठिन है। धम तो निज स्वभाव है। कठिन इसलिये जान पडता है कि हमने पहले धम पालने का अभ्यास तक नहीं किया,

[1] Some Historical Jain Kings & Heroes page 30
[2] E P Car vol V (Belur) P 124
[3] Indian Antiquary vol VI P 27

रुचि नहीं की। एक बार रुचि करके देखिये कितना आनन्द आता है।

"दूसरों को चाह मिला हो, हमें तो वांछित फल प्राप्त नहीं हुआ" ऐसा विश्वास भी कुछ लोगों का है किन्तु वह इसके कारणों पर विचार नहीं करते। हमारे पास देशी घी, बढ़िया खाड और शुद्ध सुजी है, क्या विधि जाने बिना हलवा तयार हो जायेगा? यही बात धार्मिक क्रियाओं की है। बार बार विचारो कि कहाँ भूल हुई। विधि न जानने के कारण हम पूरा लाभ नहीं ले पाते। इसलिये इस ग्रंथ में विधि और उसके कारण कि यह विधि क्यों की जाती है, सरल भाषा में और नित्य नियम की पूजन अर्थ सहित लिख दी ताकि इन का महत्व समझ कर आप इनको विधि पूर्वक अपने दैनिक जीवन में उतार सकें।

सत् संगति और परिणाम शुद्धि के लिये मंदिर जी प्रतिदिन अवश्य जाना चाहिये। यदि किसी कारण मजबूरी वश न जा सको तो इस समस्त ग्रन्थ को विचार पूर्वक स्वाध्याय अपने घर पर ही एकान्त स्थान पर प्रति दिन अवश्य कर लो। इस से आप को भाव, पूजन, स्वाध्याय संयम आदि का धर्म लाभ, आत्मिक शान्ति और लोक परलोक की सुख सामग्री आप से आप

प्राप्त होगी ।

पाठक यदि इस ग्रन्थ में कोई कमी या भूल पावें तो उसकी सूचना मुझे देने का कष्ट अवश्य करें ताकि अगले संस्करण में उसका सुधार हो सके ।

दिगम्बरदास हाऊस,
गोरी शंकर बाजार, सहारनपुर ।

दिगम्बर दास जैन,
मुख्तयार ।

१- जैन पूजा[1] दर्शन

दर्शन देवदेवस्य, दर्शन पाप नाशनम् ।
दर्शन स्वर्ग सोपान, दर्शन मोक्ष साधनम् ।।

जैसे सूर्य के दर्शन से अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही अरहंत भगवान के दर्शन से पाप अन्धकार नाश हो जाता है। देव दर्शन स्वर्ग की सीढी और मोक्ष सुख का साधन है, इसलिये छने जल से स्नान करके, रेशम तथा ऊन रहित, शुद्ध सूती तथा कम से कम वस्त्र पहन कर, नंगे सिर नहीं बल्कि टोपी या दुपट्टा ओढकर जल-पान करने से पहले, पवित्र विचारों सहित, बादाम, लौंग, चावल आदि शुद्ध और बढिया सामग्री लेकर यह प्रतिज्ञा करके कि कम से कम एक घण्टा मन्दिर जी में रहूँगा, पृथ्वी देखते हुए, नंगे पाव मन्दिर जी जाना चाहिये। रास्ते या मन्दिर में कोई घरेलू बात न करनी चाहिये।

मन्दिर जी भी एक पूज्य स्थान है। तीर्थङ्कर भगवान के समोशरण का आदर्श है। इसलिये दूर से उसका कलश या चौखट दिखाई दे तो आदर सहित

[1] देव पूजा और उसकी विधि तथा अर्थ सहित नित्यनियम पूजन दूसरे भाग में देखें।

हाथ जोडकर नमस्कार करो। समोशरण तथा तीर्थ वन्दना के लिये नगे पांव जाते है इसलिये मन्दिर जी मे भी नगे पाव जाओ। चमडा पांच इन्द्रिय जीव की भयानक हत्या के बिना प्राप्त नहीं होता इसलिये समस्त चम वस्तु न खरीदने की आज ही प्रतिज्ञा करलो। यदि जूते की आवश्यकता हो तो खडाऊ या कपडे का जूता इस्तेमाल करो, वह भी देहली के बाहर निकालो। दहलीज मन्दिर जी का ही भाग है, इसलिये दहलीज मे जूता ले जाना अविनय है।

हाथ पाव धोकर "ॐ जय ३ नि सही ३" कहते हुये, जिसका अर्थ है, "जब तक मन्दिर जी में रहूँगा ससारिक क य नहीं करूगा," मन्दिर जी के आगन मे प्रवेश करो। जिन बिम्ब को देखते ही प्रफुल्लित हो जाओ। सर झुका कर, हाथ जोडकर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ो। समोशरण में तीर्थंकर भगवान का मुख दैविक अतिशय के कारण चारों ओर दिखाई देता है जिनके दर्शनो के लिये वहा चारो ओर परिक्रमायें दी जाती है। अपने मन वचन काय तीनो योग की भक्ति प्रगट करने के लिये यहा भी हाथ जोडकर स्तुति पढते हुए तीन परिक्रमायें दो।

चावल चढाते समय हृदय में यह विचार करो,

"जिस प्रकार धान में छिलका उतरने पर यह चावल उगाने योग्य नहीं, उसी प्रकार भगवान के दर्शन-भक्ति से कर्म रूपी छिलका उतर कर मेरी आत्मा भी जन्म रहित हो जाये और मुख से यह मन्त्र पढ़ो —

तन्दुल धवल पवित्र अति, नाम सुअक्षत तास।
अक्षत सी प्रभु पूजिये, अक्षय गुण प्रकाश॥

'ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्र भ्यो ऽक्षय पद प्राप्तयेऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।" यह कर चावल चढ़ाओ, फिर अष्टांग (लेटकर) नमस्कार करो।

वीतराग शान्त मुद्रा जिनबिम्ब के दर्शन से यदि आपके हृदय में शान्ति और वीतरागता नहीं आई तो समझो आपने दर्शन हो भक्ति भाव से नहीं किये। किसी और वस्तु को न देखकर अपनी एक टक दृष्टि कुछ समय तक जिन बिम्ब में स्थिर रख कर ऐसी भावना करो — "हे जिनेन्द्र भगवान आप भी मुझ जसे रागी द्वेषी संसारी थे। आपने स्वयं अपने आत्मिक पुरुषार्थ से इतना महान ऊंचा पद पाया तो आपके चरण पथ पर चलकर स्वयं अपने पुरुषार्थ से राग द्वेष नष्ट करके मैं भी वीतरागी और शान्तिमय अवश्य हो सकता हूँ।

मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वह वीतराग यहां राग महान॥

ऐसा विचार करते २ अपने को समस्त राग द्वेष और मोह रहित श्री जिनेन्द्र भगवान के समान ही वीतरागी और परम शान्तिमयी अनुभव करो। दिन प्रति दिन अपने इस अभ्यास को बढाते हुये राग द्वेष, मोह तथा क्रोध मान माया लोभ, को घटाओ।

चर्चा समाधान पृष्ठ ६१ के अनुसार गंधोदक कर्मों के नाश करने वाला है। मस्तक तथा नयनों पर लगाते समय यह मंत्र पढो —

निर्मल निर्मलीकरण पवित्र पाप नाशनम्।
जिन गंधोदक वंदे, कर्माष्टक विनाशनम्॥

परिक्रमा तथा दर्शन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रक्खो कि आपका शरीर या वस्त्र पूजन करने वालों से न छू पाये और आपकी सामग्री छिटक कर उनके पूजन पात्र में न जा पडे। स्तुति और पूजन जो पढो उसका मतलब अवश्य जानो क्योंकि अर्थ बिना पूरा आनन्द नहीं आता।

मन्दिर जी में शास्त्र सभा होती हो तो अवश्य सुनो व जिनवाणी को नमस्कार करके अपनी रुचि का ग्रन्थ लेकर स्वयं स्वाध्याय करो और दूसरे भाईयों को सुनाओ कुछ समय सामायिक करो फिर "ॐ जय ३ श्रोसहि ३" कहकर जिसका अर्थ है कि प्रवेश करते

समय ॐ जय ३ निस ही ३ कहकर जो प्रतिज्ञा की थी वह समाप्त हुई, बडी विनय पूवक मंदिर जी से इस तरह वापिस आओ कि आपकी पीठ भगवान की ओर न होने पावे।

जब स्वग लोक से देव और इन्द्र तीर्थङ्करो के दशनो के लिये अत्यन्त आवश्यक काय छोडकर मनुष्य लोक मे आते हैं तो अपनी नगरी मे जिन मन्दिर होने पर जरूरी से जरूरी काम छोडकर भी हमें वहां अवश्य प्रतिदिन जाना चाहिये।

२—गुरु उपासना

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपन गोविन्द दिया बताय॥
कबिरा हरि के रूठते गुरु के शरणे जाय।
कह कबिरा गुरु रूठते हरि नहीं होत सहाय॥

भक्त कबीरदास कहते हैं कि यदि ईश्वर और गुरु दोनो मेरे सन्मुख हो और मुझ से पूछा जाय पहले किस को नमस्कार करोगे तो मैं झट कह दूगा, "गुरु को क्योंकि, मुझे यह क्या पता था कि भगवान महान है। यह ज्ञान तो गुरू ने कराया।" यदि किसी अपराध के कारण भगवान रूस जावें तो गुरू की

शरण मे जाकर भगवान कों मनाने को विधि निकाली जा सकती है, परन्तु गुरु रुठ जावें तो भगवान भी सहायता नहीं करते ।

आभार प्रगट करने के लिये गुरु को देखते ही प्रसन्न चित्त अपने जरुरी से जरुरी काम को छोडकर तुरन्त खडे होकर सआदर उनका स्वागत करो। आप चाहे जितने बडे हो गुरु को ऊचा स्थान दो। गुरु के चरण छुप्रो। हाथ जोडकर नमस्कार करो उनकी बात बडे ध्यान से सुनो और अपनी बात बडो विनय और मीठे वचनों में कहो। यदि गुरु को कोई कष्ट हो उसे दूर करो। रोगी हो तो आहार में औषधि प्रदान करो। कमन्डल पाछी आदि उपकरण जिनकी उनको आवश्यकता हो बिना मागे दो। भक्ति तथा विधि पूवक शुद्ध आहार कराओ। उनका उपदेश रुचि से सुनो। यदि निग्रन्थ मुनि ऐलक छुल्लक अर्जिका व्रती-त्यागी आदि गुरु निकट न हो तो उनके उपकारो का विचार करो। उनकी स्तुति पढो। जिससे जहाँ उनके अनेक गुण प्राप्त होंगे वहा महा पुण्य उपाजन होकर भोग उपभोग की उत्तम सामग्री आप से आप प्राप्त होगी। सुभग नाम के एक ग्वाले ने मुनिराज की रात भर सेवा

को जिसके कारण अगले जन्म में वह राजगृही नगर के अरब पति नगर सेठ के यहा सुदर्शन नाम का बड़ा भाग्यशाली पुत्र हुआ। गुरुओ ने अज्ञान रूपी घोर अन्धकार मे अन्धे बने हुए को ज्ञानाञ्जन लगाया। उनकी प्रतिदिन उपासना करना सम्यगदृष्टि का वात्सल्य अग है।

३—स्वाध्याय

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रविक उपजायो।
पै निज आत्म ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥
जे पूर्व शिव गये जांहि अब आगे जैं है।
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनि नाथ कहैं हैं॥

सच्चे ज्ञान के बिना ससार चक्र का फेर भी कम नहीं हो सकता। फिर कुछ लोगों का भ्रम है कि हमने ऊची कोटि के सकडो ग्रन्थ पढ लिये फिर हमें प्रतिदिन स्वाध्याय की क्या आवश्यकता? श्री जिन सेन आचार्य महापुराण पर्व बीस की गाथा १६८ में बताते हैं—

स्वाध्याय के बराबर न कोई तप है न होगा। स्वाध्याय से मन के सकल्प विकल्प दूर हुये बिना नही रहते। अज्ञानियों के लिये तो ज्ञान की प्राप्ति चाहिये ही, परन्तु ज्ञानिया के लिये भी ज्ञान की स्थिरता, दृढता और

उज्जवलता के लिये स्वाध्याय की आवश्यकता है। भगवान ऋषभदेव समस्त शास्त्रो के ज्ञाता और जन्म से ही अवधि ज्ञानी होने पर भी निरन्तर स्वाध्याय करते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि स्वाध्याय से बुद्धि की शुद्धि होती है इसलिये आप भी —

(१) खाट, पलग या कुर्सी पर बैठकर या लेट कर हाथ मे ग्रन्थ लेकर नहीं बलिक ग्रन्थ को चौकी के ऊपर विराजमान करके स्वय तखत या चटाई पर बैठकर स्वाध्याय करो।

(२) स्वाध्याय के लिये पृष्ठ को मर्यादा न रखो एक चार या दस पृष्ठ पढूँगा बलिक समय की मर्यादा रखो कि दो चार या आठ घडी स्वाध्याय करुगा, १ घडी २४ मिनट की होती है। कम से कम २ घडी स्वाध्याय अवश्य करो।

(३) स्वाध्याय करते समय पेंसिल और एक कापी अवश्य अपने पास रक्खो ताकि जो समझ मे न आवे निशान लगा सको और अवसर मिलने पर अपने से विद्वान् से पूछ सको।

(४) धार्मिक ग्रन्थ कथा कहानी के समान मत पढो बलिक जिस तरह एक चतुर वकील कानून की पुस्तक को एक २ शब्द समझ कर विचार पूवक मतलब निकाल कर पढता है उसी प्रकार धार्मिक

ग्रन्थों को विचार पूर्वक स्वाध्याय करो।

(६) शुरू में आराधना कथा कोष, पुण्य आश्रव कथा कोष, पद्म पुराण, साथ ६ ढाला, प० सुखदास का टीका वाला रत्नक रण्डश्रावकाचार, अर्थ सहित तत्त्वार्थ सूत्र, वृहद् द्रव्य संग्रह को सिलसिलेवार स्वाध्याय करके अपने अभ्यास को बढाते हुए अपनी शक्ति और रुचि अनुसार ऊंची कोटि के ग्रन्थों की स्वाध्याय करो। धार्मिक पत्र पत्रिकायें भी अवश्य पढो, परन्तु जो पढा या सुना उसे अवसर निकालकर उसका मनन न किया तो स्वाध्याय का कुछ लाभ नहीं। ऐसा तो हमने अनेक जन्मों में किया और अब भी कर रहे हैं। यदि स्वाध्याय को तप जानकर कर्मों की निर्जरा (नाश) करना है तो जो पढ़ा है उसका बार बार चिंतवन करके अपने जीवन में उतारो।

४–संयम

हम दिन रात बहुत से अनर्थदण्ड-बिना किसी प्रयोजन के ऐसे करते रहते हैं कि जिन से लाभ तो कुछ नहीं उल्टा हम सातवें नरक तक के बन्धन बान्ध लेते हैं, जिनसे बचाने वाला एक संयम ही है जैसे घोड़े को वश में करने के लिये लगाम की आवश्यकता है वैसे ही मन और इच्छाओं को वश में करने के लिये संयम की आवश्यकता है।

सयम दो प्रकार का है। (१) इन्द्रिय सयम और (२) प्राणि सयम। इन्द्रिय और मन को भोगो से हटाकर अपने वश मे करना इन्द्रिय सयम है। समस्त जीवों की रक्षा में सावधान रहना प्राणि सयम है। इन दोनों में इन्द्रिय सयम मुख्य है। क्योंकि इन्द्रिय सयम के बिना प्राणी सयम हो ही नहीं सकता।

हाथी कामवश, मछली जिह्वा वश, भौंरा घ्राण वश, हिरण कर्ण वश, परवाना चक्षु वश, एक एक इन्द्रिय की लालसा मे जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं तो मनुष्य पाचो इन्द्रियो का दास होकर कैसे शान्ति पूर्वक जीवित रह सकता है? जो भोग आप आज भोग रहे हैं यदि उनमे कमी नहीं कर सकते तो उनकी कोई सीमा तो स्थापित करो। ऐसा करने से "हींग लगे न फटकडी रग चोखा आवे" की कहावत अनुसार आप बिना किसी कष्ट के सयम पाल सकते है, इसलिये इच्छाओं को घटाने के लिये कम से कम अपनी शक्ति के अनुसार यह प्रतिज्ञा तो आज अवश्य करलो कि भोग उपभोग की १७ प्रकार की सामग्री मे से प्रतिदिन किसका बिल्कुल त्याग है, किस २ को कितना और कितने बार ग्रहण करना है। (१) भोजन (२) अनाज (३) जल

(४) नमक, मीठा छ रस (५) तेल, इत्र (६) फूल (७) पान तम्बाकू (८) गाने सुनना (९) सिनेमा देखना (१०) स्व स्त्री सवन (११) स्नान (१२) वस्त्र (१३) आभूषण (१४) कुर्सी बेंच आदि आसन (१५) खाट पलग आदि शयन (१६) घोडा, रथ, मोटर आदि सवारी और (१७) सब्जी फल आदि वनस्पति।

हर जीव जीना चाहता है। मनुष्य सब जीवो में उत्तम है, इसलिये इसका कर्त्तव्य है कि स्वय जीवे और दूसरो को जीने दे (Live and Let Live)। समस्त जीवो के प्राणि सयम के लिये मांस, शराब, चमडे की वस्तुओ का प्रयोग, बिना छना जल, रात्रि भोजन, तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलता और परिग्रह (Hoarding) पाचों पापों का त्याग करे। सयम का पालन मनुष्य जन्म में ही हो सकता है। एक क्षण भी बिना सयम न रहो। छोटी प्रतिज्ञाओ का भी बडा फल होता है। इस लिये आज ही कुछ न कुछ नियम जीवन भर के लिये नहीं तो थोडे समय के लिये आज अवश्य लो।

५–तप

तप का नाम सुनते ही भ्रम सा हो जाता है कि तप साधु और त्यागियो की क्रिया है। किन्तु इच्छाओं को रोकना तप कहलाता है। जिसका अभ्यास साधारण

गृहस्थी के लिये भी जरूरी है।

तप दो प्रकार के हैं। एक बाह्य दूसरा अभ्यन्तर। इन दोनों में से हरेक के छ छ भेद होने से तप के बारह भेद हैं —

१ अनशन तप.—इन्द्रिय और मन को जीतने के लिये कषाय रहित होकर आत्म स्वरूप में वास करना उपवास है ऐसे उपवास के हेतु बिना किसी क्लेश के यथाशक्ति निश्चित समय तक चारों प्रकार के भोजन का त्याग अनशन है।

(२) अवमौदर्य.—भोजन से रुचि घटाने और स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये भूख से कम भोजन करना।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान:—मुनि तो भोजन से पहले कुछ प्रतिज्ञा कर लेते हैं। गृहस्थी कम से कम ऐसी प्रतिज्ञा तो करे कि जो शुद्ध भोजन घर में बनेगा वह ही लूंगा अपने स्वाद के लिये कह कर और भोजन नहीं बनवाऊंगा तथा रिश्वत, ब्लैक मार्केट का त्याग।

(४) रस परित्याग.—जीभ के स्वाद की लालसा कम करने के लिये नमक, मीठा, घी दूध, दही, तेल ६ रसियों या इनमें से कुछ का मर्यादा सहित त्याग।

(५) विविक्त शयनाशन'—बिना किसी खेद के एकान्त में रहकर स्वाध्याय ध्यान आदि करना।

(६) काय क्लेश.—निश्चित समय तक एक आसन बैठना एक पसवाड़े शयन करना। मौन धरना। दुख, आपत्ति,उपसर्ग आने पर भी सक्लेश रहित शान्त परिणाम रहना। गर्मी,सर्दी आदि बाधाओं के कारण भी ध्यान से चलायमान न होना।

(७) प्रायश्चित —भूल या अज्ञानता से दोष लगने पर चरित्र की शुद्धि के लिये अपनी खुशी से उचित दण्ड लेना।

(८) विनय'—मान-त्याग और ज्ञान लाभ के लिये धर्म, धर्मात्माओं, साधु, श्रावकों का आदर सत्कार करना।

(९) वैयाव्रत.—रोगी साधु, श्रावकों आदि को देखकर ऐसा अनुभव करके कि यह दुख स्वयं मुझे ही हो रहा है, सेवा टहल कर उसे मेटने का यत्न करना।

(१०) स्वाध्याय.—धार्मिक ग्रन्थ वाचना (२) पृच्छना (३) अनुप्रेक्षा (बार बार मनन) (४) आम्नाय (एक एक अक्षर का मनन व समझकर शुद्ध पाठ करना) (५) धर्मोपदेश, ५ प्रकार है।

(११) कायोत्सर्ग:—ससार, शरीर और भोगों की लालसा घटाने के लिये खडे होकर ध्यान करना।

(१२) ध्यान.—केवल ध्यान रुपी जल में ही कर्म मल धोने की शक्ति है इसलिये गृहस्थी को भी सुबह दोपहर शाम जब भी बन सके, समस्त आकुलताओं समय निकालकर, सर्दी, गर्मी, मच्छर आदि से मुक्त एकान्त स्थान पर पूर्व या उत्तर दिशा में मुख कर के शुद्ध विचारों, शुद्ध तथा कम से कम वस्त्रों सहित, कम से कम ४८ मिनट, यह प्रतिज्ञा करके कि सामायिक के निश्चित समय तक उपसर्ग अथवा बहुत जरूरी काम आ जाने पर भी ध्यान से चलायमान नहीं हूँगा। भाव यकता पडने पर भी नहीं बोलूँगा, मौन रहूगा जो कुछ मेरे पास है उससे अधिक तथा चारों तरफ एक एक गज भूमि छोडकर कर समस्त भूमि का त्याग। शक्ति होने पर भी किसी पर पदार्थ को देखने, छूने, चखने, सूँघने, सुनने की इच्छा नहीं करूँगा। अनतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग द्वेष त्याग कर खडे आसन या तख्त, चटाई, पटडे या पत्थर की शिला पर पद्मासन बैठकर, समस्त ससारी इच्छाओं से थोडी देर बिल्कुल निश्चित हो जावे और फिर दोनों आँखें मूँद कर क्षीर सागर के परम पवित्र जल के समान अपनी आत्मा को शुद्ध अनुभव कर चितवन करें कि जैसे क्षीर सागर का जल स्वय शीतल है

भ्रौर दूसरों को मलीनता दूर करना इसका स्वभाव है वैसे ही मेरी आत्मा शुद्ध है और विभाव तथा मिथ्यात मल धोना इसका स्वभाव है। जब क्षीर सागर जल के केवल एक बार के स्नान से तीर्थङ्करों के समस्त कर्म-मल धुल कर उसी जन्म में मोक्ष प्राप्त होता है तब ध्यान रूपी क्षीर सागर में प्रतिदिन डुबकी लगाने से क्या मेरा कर्म मल नहीं धुल सकता ? निश्चय से मेरी आत्मा इसी क्षीर सागर जल के समान ज्ञानावर्णी आदि आठ कर्म, शरीर इन्द्रिय आदि ६ कर्म, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द आदि पुद्गल द्रव्य तथा आस्रव, बन्ध, क्रोध, मान, माया लोभ मोह राग-द्वेष आदि भाव मल से सिद्ध भगवान के समान शुद्ध है ऐसा चिंतवन ४८ मिनट तक निरन्तर प्रतिदिन करे। जब २ चित्त हटने लगे तब तब फिर अपनी शुद्ध आत्म स्वरूप में ही मन को स्थिर करें। पूज्य श्री अमृतचन्द्राचार्य(समयसार कलश ४४) के अनुसार आत्मा और शरीर की भिन्नता के इस भेद विज्ञान केवल ६ मास के ही अभ्यास से क्रोधादि कषाय और राग-द्वेष मोह मन्द हुये बिना नहीं रह सकता। बार बार स्थिर करने पर भी मन हटे तो पञ्चपरमेष्ठियों के स्वरूप और गुणों का चिंतवन ३ स्वासोच्छ्वास में णमोकार मन्त्र को १०८ बार जाप करो। उसमें भी मन न लगे तो बार २ ऐसा

विचार करो कि (१) अनादिकाल में हिंसा, झूट, चोरी अधिक परिग्रह से आनन्द मानने के पिछले रौद्र ध्यान के सस्कारों के कारण मेरा चित्त धर्म ध्यान मे नहीं लग रहा। यह पाप सस्कार स क्ष तू नरक का कारण है और पहले से पाचवें गुण स्थान तक बिन चाहे पाछा करते हैं। आज मैं इन चारों रौद्र ध्यान को त्यागता हूं। (२) इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग, बीमारी रोग, तथा पिछले भोग को याद मे पहले से छटे गुण स्थान तक बार-बार आर्त ध्यान करके तिर्यञ्च गति का बन्ध किया मैं आज इन चारों आर्त ध्यान को भी छोड़ता हूँ। (३) अरह त वाणी मे अटूट विश्वास, अपना और दूसरों का मिथ्यात और राग द्वेष मेटना, सुख दुख को कर्मों का फल जान कर ममता भाव से सहन करना, जीव अजीव आदि सातो तत्वों का चितवन धर्म ध्यान है। इस विधि पूर्वक तो चोथे से सातवें गुनस्थान वाले सम्यग्दृष्टि ही कर सकते हैं। मिथ्या दृष्टि तो इसका अभ्यास तथा शुभ ध्यान करते हैं। (४) अपने ही शुद्ध आत्म स्वरूप का बार २ बार विचार करना शुक्ल ध्यान है। (५) आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अवसर मिलने पर भी रौद्र और आर्तध्यान भूल कर भी नहीं करूंगा कम से

कम से कम ४८ मिनट प्रतिदिन बारह भावनायें भाया करूँगा -

बारह भावना

१- अनित्य भावना

सुन्दर स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र, अटूट धन, नीरोग शरीर, राज्यपद आदि भोग उपभोग पुण्य कर्म से कुछ समय के लिये मिल गये तो इन को नित्य समझ कर खूब अपनाया परन्तु जब यह शरीर भी नित्य नहीं तो यह चंचल संसार सम्पत्ति कैसे नित्य हो सकती है —

तन धन को साथी समझा था।
पर यह भी छोड़ चले जाते॥

२- अशरण भावना
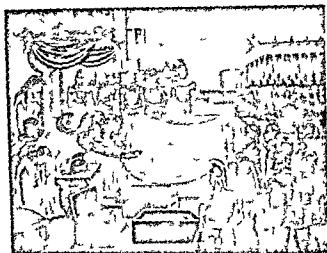
हर समय मुझे यह सूझ रहा कि मेरा कोई न कोई ऐसा सम्बन्धी या मित्र है जो क्षण भर में हमारा बिगड़ा काम सुधार दे, परन्तु मेरा कोई नहीं। धन्य है जो आज यह जाना कि इस जीव को संसार में कोई शरण नहीं है। अपने शुभ कर्म बिना हमारे के निमित्त से भी भला नहीं हो सकता। मेरी तो बात ही क्या है बलवान सेना, अटूट धन चतुर मन्त्री आदि होते पर भी सिकन्दर महान जैसे सम्राट् की कोई सहायता न कर सका और उसे खाली हाथ संसार से जाना पड़ा —

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बरिया जीव को, कोई न राखनहार॥

३-संसार भावना

(१) इष्ट वियोग (२) अनिष्ट संयोग

(३) दीनता व रोग (४) चिंता व शोक

१—इष्ट वियोग २—अनिष्ट संयोग ३—दीनता व रोग। ४—भय चिंताएं और शोक होने पर भी संसार को सुखों का स्थान मान कर इसे बड़े चाव से चाहा। यदि संसार में सुख होता तो ९६ हजार अति सुन्दर स्त्रियों का स्वामी, ३२ हजार मुकुटबद्ध राजाओं का सम्राट ९ निधि १४ रत्न और समस्त संसार का धनपति चक्रवर्ती स्वयं इस संसार को छोड़ कर साधु ना बनते। धन्य है जो आज यह जाना कि —

दाम बिना निरधन दुखी तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

४- एकत्व भावना

"मेरे अनेक सम्बन्धी और सत्कारी मित्र हैं परन्तु मैं अकेला ही हूँ। एक भाव है भी तो वह भी और यह तो पतन पर मेरा साथ नहीं देता"। इस शोक से मैं बहुत दुःखी था किन्तु यह जीव तो अकेला पैदा होता है, अकेला मरता है, अकेला कर्म करता है अकेला कर्म फल भोगता है तो फिर मुझे अकेलेपन का दुःख क्या —

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूँ इस जीव का साथी सगा न कोय॥

५-अन्यत्व भावना

आत्मा अलग है। शरीर अलग है। आत्मा भिन्न है न जाने के कारण कुछ लोग शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं। यदि आत्मा और शरीर एक होवे तो सम्पूर्ण इन्द्रियां होते हुए भी मुर्दा शरीर क्या नहीं देखता सुनता बोलता? इससे पता चलता है कि जो निकल गया है वह ही आत्मा अर्थात् जीव था। शरीर मरता है। आत्मा तो जिस तरह पुराने कपड़े उतार कर नये पहन जाते हैं पुराना चोला छोड़कर कर्मानुसार नया शरीर धारण कर लेता है।

धन्य है जो आज शरीर से अलग अपनी निज सम्पत्ति आत्मा को अनुभव किया —

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥

६- अशुचि भावना
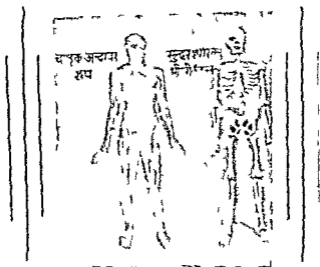
मेरी आत्मा शुद्ध चिद्रूप और परम पवित्र है परन्तु शरीर हड्डी मांस मल मूत्र आदि अत्यन्त दुर्गन्ध वस्तुओं की थैली है। पुष्टि करने पर दुर्बल, भोजन देने पर भी भूखा और रक्षा करने पर भी यह नष्ट हो जाता है। फिर ऐसे बेवफा, नाशवान, खुदगर्ज, आराम तलब और महा गन्दे शरीर से जो सात समुद्रों के जल से भी पवित्र न हो सके क्या मोह —

यह काया मेरी दुःख की ढेरी फिर क्या करूं मैं इस से ममता।
एक दिन नष्ट होना इसको, फिर आत्मा से क्यों नहीं रमता॥

७- आश्रव भावना

पाप आश्रव

पुण्य आश्रव

८- संवर भावना

कर्म रूपी शत्रु के आस्रव (आने) को रोकने के लिए संवर के सिवा दूसरी और कोई विधि है ही नहीं। धन्य है जो आज संवर की विधि और महिमा जान कर आत्म ध्यान द्वारा संवर मे रुचि कर रहा हूँ।
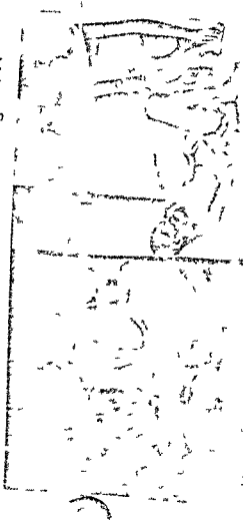
९-निर्जरा भावना

जब तक सारे कर्मों की निर्जरा (नाश) न हो जाये जन्म मरण और संसार भ्रमण कदाचित नहीं मिट सकता। तप रूपी अग्नि में ही कर्म ईन्धन भस्म करने की शक्ति है। कर्म स्थिति समाप्त होने पर फल देकर **सविपाक निर्जरा** तो पशु तक के भी हर समय होती ही रहती है। परन्तु उस निर्जरा के समय राग द्वेष कर के हम फिर नये कर्मों का बन्धन कर बैठते हैं जिसके कारण संसार चक्र समाप्त नहीं होता, इसलिये जैसे आम को पाल में दबा कर समय से पहले खाने योग्य बना लिया जाता है वैसे ही आज मैं आत्म ध्यान द्वारा **अविपाक निर्जरा** करके अन्य में आयु में भी पहले मैं ही अपने कर्म काटने का यत्न कर रहा हूँ।

१०-लोक भावना

लोक में रहते हुए भी आज तक न जान पाया कि यह लोक क्या है इस का विस्तार कितना है? देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक चारों गतियां इसी में हैं, जिनके दुःख जन्म २ भोगता रहा हूँ जिनसे मुक्त होने के लिये आज मैं लोक भावना का बार २ विचार कर रहा हूँ।

१२-धर्म भावना

मन सुख तो चाहा, किन्तु सुख के साधन धर्म वृक्ष के फल उत्तम क्षमा आदि को एक बार भी नहीं चखे। जैसा प्रेम शरीर व धन से किया वैसा एक बार भी १० लक्षण धर्म से करता तो संसार दुख मिटे बिना न रहते।

कर्मों पर निभर हैं परन्तु प्रिय वस्तु के मोह त्याग से अपना भला तत्काल हो जाता है। चचल लक्ष्मी का क्या विश्वास ? आज है कल ना भी हो। बुरे समय के लिये पैसा जोडने के कारण दान न करना उचित नहीं। बुरा समय आयेगा तो क्या धन रह सकेगा ? दान तो बुरे समय को ही टालता है, इसलिये अपनी आमदनी का दसवाँ, सोलवाँ, कुछ न कुछ भाग दान देने की प्रतिज्ञा आज ही अवश्य करलो।

निज हाथ दीजे, साथ लीजे। खाया खोया बह गया।।

अष्ट द्रव्य पूजा

दाण पूजा मुक्ख सावयधम्मे ण सावया तेणविणा।
झाण झयण मुक्ख जइधम्मेण त विणा सोवि ॥११॥

श्री कु द कु द आचार्य ने 'रयणसार' के ऊपरी श्लोक मे बताया, "दान देना और पूजा करना गृहस्थ के मुख्य कर्तव्य हैं। इन दोनो क्रियाओं के बिना गृहस्थ श्रावक नही होता।

चर्चा समाधान पृष्ट ६० के अनुसार रोगी, लोभी, पापी, अगहीन, धन के लोभी, मायाचारी और प्रतिज्ञा भग करने वाले को जिन पूजा करने का अधिकार नहीं है, इसलिये यदि हम मे इन दोषो में से कोई दोष हो तो पहले उसका त्याग करो।

जिस प्रकार शरीर की शोभा उसके पूरे अंगों से होती है, उसी प्रकार पूजा की शोभा उसके सों अंगों से है। अंगहीन पूजा अधूरी होने के कारण वांछित फल दायक नहीं इसलिये इन ६ अंगों का पालन करो —

(१) अभिषेक कुँयें के ताजा छिनाने गहित सुरत छने, लौंग रहित जल से जिन बिम्ब का अभिषेक अवश्य करो। भगवान तो स्वयं शुद्ध हैं इनका अभिषेक की आवश्यकता नहीं, परन्तु उनका अभिषेक करने वालों के परिणाम पवित्र होकर उनका कर्म मल अवश्य धुल जाता है। एक बार के अभिषेक से सौधर्म इन्द्र अगले जन्म में ही नियम से मोक्ष पाता है। श्रीपाल की दरिद्रता और कुष्ट रोग अभिषेक से शीघ्र मिटे।

(२) आह्वानन गृहस्थी रागी-द्वेषी होता है। इस लिये अशुभ भावों को शुभ में बदलने के लिये हर पूजा के शुरू में जिस देव की पूजा की जावे उनको भक्ति भाव से अपने हृदय में बुलाने का मंत्र है— अत्र (यहां मेरे हृदय में) अवतर (आइये) संवोषट् (पधारिये)" ऐसा कहकर प्रतिज्ञा रूप एक अखण्ड पुष्प ठौणे पर चढाना।

(३) स्थापना आह्वानन के बाद "अत्र (यहां) तिष्ट (ठहरिये) ठ ठ (विराजमान होवे)" ऐसा कह कर फिर एक अखण्ड पुष्प ठौणे पर चढाना।

(४) सन्निधिकरण "अत्र (यहा) मम (मेरे) सन्निहितो (निकट) भव भव (हो जाइये) वषट् (एकम् एव)" ऐसा कहकर एक और अखण्ड पुष्प ठोणो पर चढाना।

(५) अष्ट द्रव्य पूजा पूजन दो प्रकार की है (१) भाव पूजा (२) द्रव्य पूजा। समस्त विकल्प छोडकर जिन भगवान के गुणो मे भक्ति अनुराग भाव पूजन है। किसी एक सूखे द्रव्य से पूजा करना एक द्रव्य पूजा है। धोये हुये प्रासुक जल, गध, अक्षत पुष्प, नवेद्य, दीप, धूप, फल आठों द्रव्य से पूजा करना अष्ट द्रव्य पूजा है।

(६) जयमाल हर पूजन के बाद उनके विशेष गुण गायन करने के हेतु जयमाल पढी जाती है।

(७) जाप समरम्भ (किसी काय को तैयारी का विचार) समारम्भ (कार्य करने की सामग्री जुटाना) आरम्भ (शुरू करना) ३ रूप से कृत (स्वय करना) कारित (कराना) अनुमोदन (प्रशसा) ३ विधि से मन, वचन, काय ३ योग द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ ४कषाय वश ३×३×३×४=१०८ रास्तो से पाप होता है, जिन को रोकने के लिय अंतिम पूजा की जयमाल के बाद १०८ वार णमोकार मन्त्र की जाप करनी चाहिये। पूजन खडे होकर की जाती है। जाप भी पूजन का अग है, इसलिये

यह जाप बठकर नहीं बल्कि खडे होकर ही करनी चाहिये।

(८) शान्ति पाठ —जाप के बाद शान्ति की प्राप्ति क लिये पढा जाता है।

(९) विसर्जन——जिन देवो का पूजन के आरम्भ में भाव में आह्वानन् किया था उनको सआदर भाव में ही विदा करने के लिये विसर्जन पढ़ते हुय एक एक अखण्ड पुष्प ३ बार ठौणे पर चढा कर पहली आह्वानन की प्रतिज्ञा को समाप्त किया जाता है।

पूजन करने वाल को पूरा ध्यान रखना चाहिये कि —

(१) सामग्री चुग–छान कर अखण्ड, साफ, बढ़िया प्रतिदिन अपने घर से ले आओ, यदि मन्दिर जी की सामग्री से पूजा करनी पडे तो उसका पूरा मूल्य मन्दिर जी में जमा करा दो।

(२) छने जल में ४८ मिनट बाद जीव फिर उत्पन्न हो जाते है, इसलिये लौंग मिले हुये छने जल से पूजन को सामग्री धोनी चाहिये। जल चन्दन की गिलासियो में भी लौंग डालनी चाहिये।

(३) धोती अधो वस्त्र है और दुपट्टा उत्तरीय वस्त्र है इसलिये धोती का ही भाग ऊपर ओढ़ना उचित नहीं। धोती दुपट्टा दोनों वस्त्रों का प्रयोग आवश्यक है।

यह दोनों वस्त्र फटे, पुराने, मैले और सिले हुये नहीं होने चाहिये। इन में जगल दिशा की गई तो फिर स्वय या धोबी से धुलवाने पर भी पूजन के योग्य नहीं रहते। यदि हो सके तो घर से अपना शुद्ध धोती, दुपट्टा ले जाओ।

(४) बठ कर, बनयान या वास्कट पहनकर पूजन करना उचित नहीं।

(५) नगे सिर पूजन करना अविनय है। पूजन करते समय दुपट्टा सरक जाये तो फिर सिर पर करलो।

(६) फश या चटाई पर नही बल्कि पटडे पर खडे होकर पूजा करो ताकि कोई जीव पाँव तले न आवे।

(७) पूजन से पहले अपने तिलक और जिन पात्रो में सामग्री चढाई जावे, उन सब पर स्वास्तिक चि ह बनाओ। यह मङ्गलिक चि ह है जिसका अथ है मेरी चारों गतियाँ कट जायें।

(८) पूजन पात्र स थली की कम से कम जगह पर रक्खो। किसी पूजन करने वाले की कोई वस्तु बिना उसकी आज्ञा के न लो।

(९) पूजा में बाधा पडने पर भी क्षमा भाव रखो।

(१०) केवल जल च दन आदि कहना उचित नहीं। ॐ ह्र से निवपामीति स्वाहा तक पूरा मन्त्र बोल कर सामग्री चढाओ।

प्रथम अर्घ

मैं पूजूं जिन बिम्ब[1] को, कर अति निर्मल[2] भाव।
कर्म बन्ध के छेद को, और न कोई उपाय॥
मेटें नौ निधि चौदह रत्न, मांगे पर दुख भव-ताप[3]।
भव[4]-भव आप सुख देत हो, बिन मांगे आप से आप॥
कहां कल्प-वृक्ष चिंतामणि, अपने गुण ना देय।
आप निज गुण दातार हो, जै जै जै जिन देय॥
पतित[5] अनक पावन[6] किये, गिनती किस से हो।
उतारे पार अंजन चोर से, मेंढ़क पशु तक को॥

एक द्रव्य जिन पूजिया, माली सुता[7] अज्ञान।
प्रथम स्वर्ग में इन्द्रानी भयो, महा पुण्य की खान॥
मैं पूजूं अष्ट द्रव्य से, भक्ति सहित जिनेश।
निश्चय से मोक्ष मिले, मिटे सब विघन क्लेश॥
जसी महिमा तुम विषे, और धरे न कोय।
सूरज में जो जोत है, नहीं तारा गण में सोय॥

उदक[8] चन्दन तंदुल पुष्प कैश्[9]—
चरू सुदीप सुधूप फलार्घक।
धवल[10] मङ्गलगान[11] रवा[12] कुले,[13]
जिनगृहे[14] जिनराज[15] महं[16] यजे[17]।

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्राय गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण कल्याणक प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

---

[1]अर्हन्त मूर्ती, [2]शुद्ध, [3]दुःख, [4]जन्म-जन्म, [5]पापी [6]पवित्र, [7]पुत्री, [8]जल, [9]द्वारा [10]उत्तम, [11]सुखदायक गीत, [12]आवाज, [13]भरे हुए [14]जिन मन्दिर, [15]जिनेन्द्र भगवान, [16]मैं, [17]पूजता हूँ।

देव-शास्त्र गुरु पूजा

केवल रवि[1]-किरणा से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर[2]।
जिस श्री जिनवाणी में होता, तत्वों का सुन्दरतम[3] दर्शन।
सद्दर्शन[4]-बोध[5]-चरण[6]-पथ[7] पर, अविरल[8] जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शत[9] वंदन, शत शत वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु भ्यो अत्र अवतर अवतर संवौषट्*।
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु भ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।*
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु भ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्*।

इन्द्रियों के भोग मधुर विष[10]सम, लावण्यमयी[11] कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा[12] है, मैं अब तक जान नहीं पाया।
मैं भूल स्वयं को वैभव[13] को, पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर[14] लिये, मिथ्या मल धोने आया हूँ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु भ्यो मिथ्यात्व मल विनाशनाय जल निर्वपामीति[15] स्वाहा।

जड़ चेतन की सब परिणति[16] प्रभु, अपने अपने में होती है।
अनुकूल[17] कहें प्रतिकूल[18] कहें, यह झूठी मन की वृत्ति[19] है।
प्रतिकूल संयोगों[20] में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
मेरा सन्तप्त[21] हृदय चन्दन सम शीतलता पाने आया है॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु भ्यो क्रोध कषाय मल विनाशनाय चन्दन निर्वपामिति स्वाहा।

---

[1]केवल ज्ञान रूपी सूर्य [2]हृदय [3]बहुत अच्छा, [4]सम्यग्ज्ञान [5]ज्ञान [6]चरित्र [7]रास्ता, [8]लगातार, [9]१०० बार, *देखो पृष्ठ ४१ [10]जहर के समान, [11]सुन्दर, [12]खेल [13]सम्पत्ति, [14]सम्यक रूपी जल, [15]भेंट [16]परिवर्तन [17]अच्छा [18]बुरा [19]विचार [20]पदार्थ, [21]दुखी।

उज्ज्वल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु ! पर से न लगा हूँ किंचित भी ।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही ॥
जड़ पर झुक झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया ।
निज शाश्वत अक्षय निधि पाने, अब दास चरण रज में आया ॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो मान कषाय विनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।
यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं ।
निज अन्तर का प्रभु ! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं ॥
चिन्तन कुछ फिर सम्भाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है ।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष धोती है ॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो माया कषाय विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु ! भूख न मेरी शान्त हुई ।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ॥
युग युग से इच्छा सागर में, प्रभु गोते खाता आया हूँ ।
पंचेन्द्रिय मन के षट् रस तज तज अनुपम रस पीने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो लोभ कषाय विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा ।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा ॥
अतएव प्रभु ! यह नश्वर दीप समर्पण करने आया हूँ ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर दीप जलाने आया हूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो अज्ञान अन्धकार विनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
जड़ कर्म घुमाता है मुझको यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी ।
मैं राग द्वेष किया करता जब तब परिणति होती जड़ केरी ॥

---

[1]साफ [2]दोष रहित [3]सफेद [4]कुछ भी [5]सदा [6]मान रहित [7]टूटी हुई [8]अविनाशी [9]मोक्ष [10]खजाना [11]पांव की धूल [12]बहुत मुलायम [13]बाकी [14]अपने अन्दर [15]सरलता [16]नाम [17]वचन [18]इच्छा [19]अनगिनत [20]खाली [21]छह [22]स्वाद [23]चाँदना [24]आंधी [25]झोंका [26]बहुत [27]इसलिए [28]नाशवान [29]भेंट [30]भ्रम [31]परिवर्तन [32]की

यों भाव करम या भाव मरण सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध अनल[1] से प्रभु परगंध[2] जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो विभाव परिणति विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल[3] व्याकुल[4] हो लेता व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शांत निराकुल[5] चेतन हूँ है मुक्तिरमा[6] सहचरि मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े प्रभु! सार्थक[7] फल[8] पूजा तेरी॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निजरस[9] को पी चेतन मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट[10] किये निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित[11] होता केवल रवि[12] जगमग करता है।
दर्शन-बल पूर्ण प्रगट होता यही अर्हंत अवस्था है॥
यह अर्घ्य समर्पण[13] करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश[14] प्रभु! अर्हंत अवस्था पाऊँगा॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो अनर्घ्य[15] पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाल

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर भर देखा।
मृग सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा[16]॥
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन जीवन-यौवन-अस्थिर[17] हैं, क्षणभंगुर पल में मुरझाएँ॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥
संसार महा दुख सागर के प्रभु! दुखमय सुख आभासों[18] में।

---

[1]आग [2]विभाव [3]दुखी [4]चंचल [5]सुखी [6]मोक्ष में रमना [7]सफल [8]लाभ [9]आत्मिक स्वाद [10]नाश [11]प्राप्त [12]केवल ज्ञान रूपी सूर्य [13]भेंट [14]सम्मुख [15]मोक्ष [16]निशान [17]नाशवान [18]दिखाई देने वाले।

मुझको न मिला सुख क्षण भर भी कंचन[1] कामिनी[2] प्रासादों[3] में ॥
मैं एकाकी[4] एकत्व[5] लिये, एकत्व[5] लिए सब ही आते ।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते ॥
मेरे न हुये ये मैं इन से, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ ।
निज में पर से अन्यत्व[6] लिये निज सम रस[7] पीने वाला हूँ ।
जिसके शृंगारों[8] में मेरा यह महंगा[9] जीवन घुल[10] जाता ।
अत्यन्त[11] अशुचि[12] जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता ॥
दिन रात शुभाशुभ भावों से मेरा व्यापार चला करता ।
मानस[13] वाणी[14] और काया से आस्रव[15] का द्वार खुला रहता ॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल[16] ।
शीतल समकित किरणें फूटें संवर[17] से जागे अन्तर्बल[18] ॥
फिर तप की शोधक[19] वह्नि[20] जगे कर्मों की कड़ियाँ[21] टूट पड़ें ।
सर्वांग[22] निजात्म[23] प्रदेशों[24] से, अमृत के निर्झर[25] फूट पड़ें ॥
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा ।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त[26] बने फिर हम को क्या ॥
जागे मम दुर्लभ बोधि[27] प्रभु, दुर्नय[28] तम[29] सत्वर[30] टल जावे ।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद[31] मत्सर[32] मोह विनश[33] जावे ॥
चिर-रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी ।
जग में न हमारा कोई था हम भी न रहें जग के साथी ॥
चरणों में आया हूँ प्रभुवर शीतलता मुझ को मिल जावे ।

---

[1]सोना [2]स्त्री [3]मकान [4]अकेला [5]अकेलापन [6]अलगाव [7]अपनी आत्मिक समता का स्वाद [8]सजावट [9]दुर्लभ मनुष्य जीवन [10]बरबाद [11]बहुत [12]गन्दा [13]मन [14]वचन [15]कर्म आना [16]हृदय [17]कर्मों का रुकना [18]आत्मिक शक्ति [19]शुद्ध करने वाली [20]आग [21]बन्धन [22]पूरी तरह [23]अपनी आत्मा [24]प्रमाणु [25]झरना [26]आगामी [27]सम्यक ज्ञान [28]अज्ञान [29]अन्धकार [30]जल्दी [31]मान [32]ईर्षा [33]नष्ट हो।

मुरझाई ज्ञान लता[1] मेरी निज अन्तराय से खिल जाय ॥
सोचा करता हूं भोगों से, शुभ आवेगा इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन मानो पावक[2] में घी डाला।
तेरे चरणों की पूजा में, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा[3]।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु सच्चे सुख की भी परिभाषा[4]॥
तुम तो अविकारी[5] हो प्रभुवर, जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव[6] मुझे तव चरणों में, जग के माणिक मोती क्षार॥
स्याद्वाद मयी तेरी वाणी, शुभ नय के झरने झरते हैं।
उस पावन[7] नौका पर लाखों प्राणी भव वारिधि[8] तिरते हैं॥
हे गुरुवर! शाश्वत[9] सुख दर्शन[10] यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता[11] का सच्चा, दिग्दर्शन[12] करने वाला है॥
जब जग विषयों में रच पच[13] कर गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा[14] वह शिव[15] के निष्कंटक पथ[16] में विष कंटक[17] बोता हो॥
हो अर्ध निशा[18] का सन्नाटा[19], वन में वनचारी[20] चरते हों।
तब शांत निराकुल[21] मानस तुम, तत्वों का चिन्तन करते हो॥
करते तप शैल[22] नदी तट पर, तरु तल[23] वर्षा की झड़ियों[24] में।
समता रस पान[25] किया करते सुख दुख दोनों की घड़ियों में॥
अन्तर[27] ज्वाला हरती[28] वाणी मानो झड़ती हो फुलझड़िया।
भव बन्धन तड़ तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियां॥
तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियां[29]।
दिन रात लुटाया करते हो, सम शम[30] की अविनश्वर[31] मणियां[32]॥

---

[1]ज्ञान रूपी कली [2]अग्नि [3]चाहना [4]मतलब [5]राग द्वेष रहित [6]इसलिए [7]पवित्र [8]संसार रूपी सागर [9]सदा रहने वाले [10]दिखाने वाले [11]नाशवान [12]स्पष्ट दिखाने वाला [13]घोर नींद [14]या [15]मोक्ष [16]साफ रास्ता [17]जहर भरे कांटे [18]आधी रात [19]खामोशी [20]जानवर [21]सुखी [22]पहाड़ [23]वृक्ष के नीचे [24]मूसलाधार बारिश [25]शांति का स्वाद [26]जलना [27]अन्दर की आग [28]नाशक [29]शील खजाने [30]शान्ति [31]नाश न होने वाला [32]बहुमूल्य वस्तुएं।

यह ससार अपार महा सागर जिन स्वामी ।
तातैं तारे बड़ी, भक्ति नौका जग नामी ॥
तदुल अमल[1] सुगंध सों पूजों तुम गुण सार[2] । सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्व०

भविक[3]-सरोज[4] विकाश[5], निंद्य[6] तम[7] हर[8] रविसे[9] हो ।
जति[10] श्रावक आचार[11], कथन को, तुम ही बड़े हो ॥
फूल सुवास[12] अनेक सों पूजों मदन प्रहार[13] । सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्य कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्व०

काम नाग विषधाम[14], नाशको गरुड़ कहे हो ।
क्षुधा[15] महा दव ज्वाल[16] तास[17]को मेघ[18] लहे हो ॥
नेवज[19] बहु घृत[20] मिष्ट[21] सों, पूजों भूख विडार । सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्य क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य०

उद्यम[22] होन न देत, सर्व जग माहिं भरयो है ।
मोह महा तम[23] घोर, नाश परकाश करयो है ॥
पूजों दीप प्रकाश सों ज्ञान ज्योति करतार । सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं०

कर्म आठ, सब काठ,—भार[24], विस्तार[25] निहारा[26] ।
ध्यान अगनि कर प्रकट, सरब कीनो निरवारा[27] ॥
धूप अनूपम खेवतैं हूँ, दुःख जले निरधार[28] । सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० स्वाहा

मिथ्यावादी[29] दुष्ट[30], लोभ अहंकार[31] भरे हैं ।
सब को छिन म जीत जैन के मेरु[32] खरे हैं ॥

---

[1]साफ [2]उत्तम [3]भव्य जीव [4]कमल [5]खिलना [6]निन्दा [7]अंधेरा [8]नाश [9]सूर्य [10]मुनि [11]धर्म [12]खुशबूदार [13]काम नाश [14]जहर भरा [15]भूख [16]भयानक अग्नि [17]उस [18]वर्षा [19]पकवान [20]घी में भुने हुए [21]मीठे [22]पुरुषार्थ [23]अंधकार [24]बोझ [25]फैलाव [26]देखा [27]नष्ट [28]गरत स [29]झूठे [30]बुरे [31]घमण्ड [32]मसूल ।

फल अति उत्तम सों जनों वाञ्छित फल दातार। सीम०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति[1] धरी है।
गणधर इन्द्र नहूतैं, थुति[2] पूरी न करी है॥
द्यानत सेवक जान के जगतैं लेहु निकार। सीमंधर आदि०
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाल

ज्ञान सुधा[3] कर चन्द,[4] भविक[5] खेत हित मेघ हो।
भ्रम तम[6] भान[7] अमंद[8], तीर्थङ्कर बीसों नमों॥

सीमंधर सीमंधर[11] स्वामी, जुगमंधर जुगमंधर[12] नामी।
बाहु बाहु[13] जिन[14] जगजन[15] तारे। करम सुबाहु[16] बाहुबल[17] दारे॥
जात सुजात[18] सुकेवल ज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं[19]।
ऋषभानन ऋषि भानन[3] दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं[21]॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं[22]। सुगुण विशाल विशाल[23] दयालं[24]।
वज्रधार भव गिरि वज्जर[25] हैं। चन्द्रानन चन्द्रानन वर[26] हैं॥
भद्रबाहु भद्रनि[20] के करता। श्रीभुजंग भुजंगम[1] हरता[28]।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं[3]। नेमिप्रभु जस[31] नेमि[32] विराजैं॥

---

[1]प्रेम [2]स्तोति [3]अमृत [4]खान [5]चन्द्रमा [6]भव्य जीव [7]वर्षा [8]अन्धकार [9]सूर्य [10]मंद न होने वाला [11]बड़े [12]जग में प्रसिद्ध [13]बलवान [14]जिनेन्द्र भगवान [15]संसार के जीव [16]बहुत बलवान [17]नाशक [18]उत्तम [19]बिना किसी की सहायता के बड़े [20]मुनियों के दोष नाशक [21]शक्ति का खजाना [22]अच्छे गुणवान [23]बहुत बड़े गुणों वाले [24]दयालु [25]संसार रूपी पहाड़ को तोड़ने के लिये बिजली [26]चन्द्रमा के समान उत्तम [27]कल्याण [28]काम रूपी सर्प [29]नाशक [30]भगवान हो [31]यश [32]गाड़ी की धुरी के समान सामञ्जस्यक हो।

वीरसेन वीर[1] जग जानै। महाभद्र महाभद्र[2] बखानै[3]।
नमों जसोधर जसधरकारी[4]। नमों अजितवीरज बलधारी॥
धनुष पाचसौ काय विराजै। आव[5] कोडि पूरब[6] सब छाजै।
समवशरण शोभित जिनराजा। भव जल तारन तरन जिहाजा॥
सम्यक रत्नत्रय निधि दानी[7]। लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत[8] इन्द्रनि करि वंदित सोहैं। सुर नर पशु सबके मन मोहैं॥
ॐ ह्रीं श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्करेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम को पूजें वंदना करें धन्य नर सोय।
द्यानत सरधा मन धरें, सो भी धरमी होय॥ (इत्याशीर्वादः)

३–सिद्ध पूजा

अष्ट करम करि नष्ट अष्ट गुण पायकैं।
अष्टम वसुधा[10] माहिं[11] विराजे जायकैं॥
ऐसे सिद्ध अनंत[12] महंत[13] मनायकैं।
संवौषट्[14] आह्वान[15] करूं हरषाय[16] कैं॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्*
ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः*।
ॐ ह्रीं श्री सिद्ध परमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्*।

हिम[17] वन[18] गत गंगा[19] आदि[20] अभंगा[21] तीर्थ उतंगा[22] सरवंगा[23]।
आनिय[24] सुरसंगा[25] सलिल[26] सुरंगा[27] करि मनचंगा भरि भृंगा[28]॥
त्रिभुवन[29] के स्वामी त्रिभुवन नामी अंतरजामी[30] अभिरामी[31]।
शिवपुर[32] विश्रामी निजनिधि[33] पामी, सिद्ध जजामी[34] सिर नामी[35]॥

---

[1]बलवान [2]बहुत ज्यादा कल्याण कारी [3]कहे [4]यश के करने वाले [5]आयु [6]एक करोड [7]रत्नत्रय रूपी खजाना देने वाले [8]सौ [9]आठ [10]आठवीं पृथ्वी [11]में [12]अनगिणत [13]बड़े [14]पधारने के लिये [15]बुलाना [16]खुशी [17]हिमालय [18]जंगल [19]चलने वाला [20]शुरू में [21]टूट फूट [22]ऊंचा [23]उत्तम [24]लाकर [25]स्वर्ग के देव [26]जल [27]रंग वाला [28]कलश [29]तीनों लोक [30]केवल ज्ञानी [31]सुन्दर [32]मोक्ष [33]आत्मीक सुख का खजाना [34]नमस्कार [35]सर झुका कर। *पृष्ठ ४१

[1] श्री मनोज्ञ पराक्रमाय[1] सव कर्म विनिमुक्ताय सिद्धचक्राधि[1] पाये[3] जल०

हि चन्दन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मनभायो ।

उस संग घिसायो रंग सुहायो[6], चरन चढ़ाया हरषाया[9] ॥त्रिभु ।

[8] श्री मनोहर पराक्रमाय सवकर्मविनिमुक्ताय सिद्धचक्राधिपतय चन्दन नि०

तुल[11] उजियार[1] शशि दुतिकार[13], कामल प्यारे अनियार[14] ।

[14] मेद निकार[15] लखु परवार[1] पुंज[16] तुम्हार ढिग[17] धारे ॥त्रिभु०॥

[8] श्री मनोज्ञ पराक्रमाय सव कर्म विनिमुक्ताय सिद्ध चक्राधिपतय अक्षतान् नि०

[21] तरु की वारी[11], प्रीति निवारी, किन्या प्यारी गुलनारी[19] ।

[11] कंचन[1] थारी फूल सवारी, तुम पद ढारी अति सारी ॥त्रिभु०॥

[8] श्री मनोहर पराक्रमाय सव कर्म विनिमुक्ताय सिद्ध चक्राधिपतय पुष्प नि०

व्यान नियाने[17], स्वाद विराजे[28], अमृत लाज छुध[26] भाजे[3] ।

मोदक[31] छाने[32], घेवर ग्याजे[33], पूजन काजे धरि ताने ॥त्रिभु ॥

[8] श्री मनोज्ञ पराक्रमाय सव कर्म विनिमु काय सिद्ध चक्राधिपतय नैवद्य नि०

धा पर भासैं[34] ज्ञान प्रकाश चित्त विकासैं[35] तम नासैं[36] ।

विधि ख्यासैं[37] दीप उजास[38], धरि तुम पास उल्लास[39] ॥त्रिभु ॥

श्री मनोहर पराक्रमाय सव कर्म विनिमुक्ताय सिद्ध चक्राधिपतय दीप नि०

दक[40] अलि[41] माला[42] शुध विशाला चन्दन कालागरु माला[43] ।

चूर्ण[44] रसाला[1] करि ततकाला अग्नि ज्वाला में डाला ॥त्रिभु ॥

---

[1]लक्ष्मी [2]मनोज्ञ [3]शक्ति वाले [4]सब [5]रहित [6]सब से सिद्ध [7]भगवान [8]इच्छा [9]खुश हो कर [11]चावल [12]चमकदार [13]चन्द्रमा की [14]शरमाने वाले [15]बहुत बढ़िया [16]ढिगला [16]रश्मि [17]घोये हुए [18]निकट (पास) [2]रखे [21]स्वर्ग [22]कल्प वृक्ष [23]बागीचा [24]प्रेम [25]फूलों भरी [26]सोना [27]भोजन [28]स्वादिष्ट [29]भूख [3]भागे [31]लड्डू [32]सुन्दर [33]मिठाईयाँ [34]निज और पर का भेद दिखाने वाले [35]दिल खिलाने वाले [36]अंधकार नाशक [37]आदर [38]जला कर [39]खुश हो [40]सूखना [41]भौंरे [42]समूह [43]बढ़िया [44]उसके [45]पीस कर [46]भेंट [46]उसी समय ।

ॐ ह्रीं श्री अनाहत पराक्रमाय सर्व कर्म विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये धूप नि०

श्री फल[1] अतिभारा[2], पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा[3] ।
रितु रितु का न्यारा सत्फल सारा, अपरम्पारा लै धारा ॥त्रिभु०॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत पराक्रमाय सर्व कर्म विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये फल नि०

जल फल वसु वृन्दा[4] अर्घ अमन्दा, जजत अनन्दा के कन्दा[5] ।
मेटो भवफन्दा[6] सब दुख द्वन्दा[7], 'हीराचन्दा' तुम वन्दा ॥त्रिभु०॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहत पराक्रमाय सर्व कर्म विनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं नि०

जय माल

ध्यान दहन[8] विधि दारु[9] दहि[10] पायो पद निरवान ।
पंचभाव जुत[11] थिर[12] थये, नमों सिद्ध भगवान ॥

सुख सम्यक्दर्शन ज्ञान लहा[13] अगुरु[14] लघु[15] सूक्षम[16] वीर्य[17] महा[18] ।
अवगाह[19] अबाध[20] अघायक[21] हो, सब सिद्ध नमों सुखदायक हो ॥
असुरेन्द्र[22] सुरेन्द्र[23] नरेन्द्र[24] जजैं भुवनेन्द्र[25] खगेन्द्र[26] गणेन्द्र[27] भजैं ।
जर[28] जामन मरण मिटायक हो, सब सिद्ध नमो सुखदायक हो ॥
अमल[29] अचल[30] अकल[31] अकुल[32] अछल[33] अमन[34] अरुल[35] अतुल[36] ।
अरल सरल[37] शिव नायक[38] हो, सब सिद्ध नमो सुखदायक हो ॥
अजर[39] अमर[40] अधर[41] सुधर,[42] अडर[43] अहर[44] अमर अघर[45] ।

---

[1]नारियल [2]बहुत बढ़िया [3]इकट्ठा कर के [4]आठों द्रव्य का समूह [5]करन वान [6]संसारी बन्धन [7]दुख [8]अग्नि [9]ईंधन [10]जला कर [11]साथ [12]मजबूती से [13]प्राप्त किया [14]न भारी [15]न हलका [16]जो न छुए रुक न किसी को रोक [17]शक्ति [18]बड़ा [19]स्थान [20]जहाँ कोई बाधा न हो [21]दुख न देने वाले [22]पाताल का राजा [23]इन्द्र [24]चक्रवर्ती [25]भवन वासी स्वर्ग का राजा [26]विद्याधरों का राजा [27]गणधर [28]बुढ़ापा [29]मल रहित [30]चलायमान न होने वाला [31]कलंक रहित [32]खानदान रहित [33]छल कपट रहित [34]इच्छा रहित [35]क्रोध रहित [36]तृष्णा रहित [37]सरल स्वभाव [38]मोक्ष के नेता [39]बुढ़ापा रहित [40]मरण रहित [41]धर्म कर्म रहित [42]आत्म धर्मी [43]भय रहित [44]घमण्ड रहित [45]पाप रहित ।

अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर[1] नये[2] ॥
नव हाथ उन्नत[3] तन विराजै, उरग[4] लच्छन[5] पद लसैं[6] ।
थापूँ तुम्हैं जिन आय तिष्ठो*, करम मेरे सब नसैं[7] ॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र । अत्र अवतर अवतर संवौषट ।*
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ ठ ।*
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट ।*

क्षीर[8] सोम के समान अम्बुसार[9] लाइये ।
हेमपात्र[10] धारिकैं सु आपको चढ़ाइये ॥
पार्श्वनाथ देव सेव[11] आपकी करूँ सदा ।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि० स्वाहा ।

चन्दनादि केशरादि स्वच्छ[12] गन्ध लीजिये ।
आप चर्न चर्च[13] मोहताप को हनीजिये ॥ पार्श्व० ॥ चन्दनं
फेन[14] चन्द के समान अक्षतान लाईकैं ।
चर्ण के समीप सार पुँज को रचाइकैं[15] ॥ पार्श्व० अक्षतं
केवड़ा गुलाब और केतकी चुनायकैं ।
धार[16] चर्ण के समीप काम को नसायकैं ॥ पार्श्व० पुष्प
घेवरादि बावरादि[17] मिष्ट सद्यमैं[18] सने ।
आप चर्ण चर्चते[13] क्षुधादि[19] रोग को हनैं ॥ पार्श्व ॥ नैवेद्य
लाय रत्न दीप को सनेह पूरके भरूँ ।
वातिका[20] कपूर वारि[21] मोह ध्वांत[22] को हरूँ ॥ पार्श्व० ॥ दीप
धूप गन्ध लेयकैं सु अग्नि संग जारिये[23] ।

---

[1]इन्द्र [2]नमस्कार [3]ऊँचा [4]सांप [5]निशानी [6]शोभित [7]मिट [8]दूध [9]कुए का जल [10]सोने के बरतन [11]सेवा [12]पवित्र [13]पूजा [14]किरण [15]ढेरी करके [16]धर कर [17]स्वादिष्ट [18]ताजा मिठाई [19]भूक [20]बत्ती [21]जलाकर [22]अन्धकार *देखो पृष्ठ ४१ ।

ताम[1] धूप के सुमग[2] अष्ट कर्म वारिये ॥ पार्श्व० ॥ धूप
खारिकादि[3] चिरभटादि[4] रत्न थाल में भरूँ ।
हर्ष धारि के जजूँ सुमोक्ष सुक्ख को वरूँ[5] ॥ पार्श्व० ॥ फल
नीर गंध अक्षतान पुष्प चारु लीनिये ।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ से जजीनिये[6] ॥ पार्श्व०
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय महा अनर्घ्य पद प्राप्तये महा अर्घम् । नि०स्वाहा

शुभ प्रानत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर[7] आये ।
वशाख तनी दुति[8] कारी हम पूजें विघ्न निवारी ॥
ॐ ह्रीं वशाख कृष्ण द्वितीयायां गर्भ मगल मण्डिताय श्री पार्श्व० अर्घम् नि०स्वाहा

जनमे त्रिभुवन[9] सुखदाता एकादशी पौष विख्याता[10] ।
श्यामा तन अद्भुत[11] राजै रवि कोटिक तेज सुलाजै[12] ॥
ॐ ह्रीं पौष कृष्णा इकादश्यां जनम मङ्गल प्राप्ताय श्री पार्श्व० अर्घ नि० स्वाहा

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावना भाई ।
अपन कर[13] लोंच सु कीना, हम पूजें चरन जजाना[14] ॥
ॐ ह्रीं पौष कृष्णएकादश्यां तपो मङ्गल मडिताय श्री पा र्श्व अर्घम् नि० स्वाहा

कलि चैत चतुर्थी[15] आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई ।
तब प्रभु उपदेश जु कीना भवि[16] जीवन को सुख दीना ॥
ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण चतुर्थी दिन केवलज्ञान प्राप्ताय श्री पार्श्व० अर्घ नि० स्वाहा

सित[17] सातें सावन आई शिवनारि वरी जिनराई[18] ।
सम्मेदाचल हरि माना[19], हम पूजें मोक्ष कल्याना ॥
ॐ ह्रीं श्री श्रावण शुक्ल सप्तम्यां मोक्ष मगल मडिताय श्री पार्श्व अर्घम् नि० स्वाहा

जयमाल

पारसनाथ जिनेन्द्र तने[20] वच[21] पौन[22] भखी जरतें सुन पाय ।

---

[1]उस [2]साथ [3]उत्तम [4]स्वादिष्ट [5]प्राप्त [6]पूजूँ [7]गर्भ [8]दीज [9]तीनों लोक [10]प्रसिद्ध [11]सुन्दर [12]करोड़ों सूर्यों की चमक भी शरमिन्दा हो [13]हाथ [14]बार बार पूजना [15]चौथ [16]मोक्ष के योग्य [17]शुक्ले [18]जिनेन्द्र भगवान [19]इन्द्र पूजता है[20] जिनके [21]वचन [22]हवा [23]खाने वाला [24]जलते हुये सर्प ।

तबहिं सुर चार प्रकार नियोग[1], धरि शिविका[2] निज कंध[3] मनोग[4]।
कियो वनमाहिं निवास जिनंद, धरे व्रत चारित आनंद कंद॥
गहे[5] तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तनें जु अवास[6]।
दिया पयदान महा सुखकार, भयी पनवृष्टि[7] तहाँ तिहिं बार॥
गये तब कानन[8] माहिं दयाल, धर्‍यो तुम योग सबहिं अघ[9] टाल।
तबै वह धूम सुकेतु अयान[10], भयो कमठाचर[11] को सुर आन॥
करै नभ[12] गौन[13] लखे[14] तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर।
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर॥
रह्यो दशहूँ दिशि में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी[14] नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़ै जल मूसलधार अथाय॥
तबै पद्मावती कंथ धनिंद, चले जुग[15] आय तहाँ जिनचंद।
भग्यो तब रंक सो देखत हाल, लह्यो तब केवल ज्ञान विशाल॥
दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोधि समेद पधार।
सुवर्णभद्र जहँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिव नारि लही वसुरिद्ध[16]॥
जजूँ तुम चरन दुहूँ कर[17] जोर, प्रभू लखिये[14] अब ही मम ओर।
कहै बखतावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भवपार लगाय॥

जय पारस देव सुर कृत सेवं, वंदत चरण सुनागपति।
करुना के धारी परउपकारी, शिवसुखकारी कर्महती[18]॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय महा अनर्घ्य पद प्राप्तये पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजैं मनलाय भव्य पारस प्रभु नित ही,
ताके दुख सब जाँय भीत[19] व्यापै नहिं कितही।
सुख संपति अधिकाय[20] पुत्र मित्रादिक सार,
अनुक्रमसों[21] शिव लहै, 'रतन' इमि कहै पुकार[22]॥ इत्या०

---

[1]नियम अनुसार [2]पालकी [3]अपने कंधे [4]सुन्दर [5]धारे [6]सेठ धनदत्त के अहार लिया [7]पंच चमत्कार [8]जंगल [9]पाप [10]अज्ञान [11]मर कर व्यन्तर देव [12]आकाश [13]चलना [14]देखना [15]दोनों [16]आठों रिद्धियाँ [17]दोनों हाथ [18]कर्म-नाशक [19]रोग [20]अधिक बढ़ें [21]सिलसिलेवार [22]कवि रत्न कहे हके का चोट।

५-श्री महावीर-जिनपूजा

नाथ वंश के प्राण वीर, त्रिशला सिद्धार्थ सपूत ।
संवौषट्* आह्वान* करूँ आपका, हे शान्ति के अग्रदूत[1] ।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर । संवौषट्* ।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः* ।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्* ।

जन्म मरण के हैं, दुखदाई रोग महान ।
जिन के भेदन को लाया जल क्षीर[2] समान ॥
मैं पूजूँ मन वाञ्छित फलदायक[3] भगवान ।
वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति श्रीवर्द्धमान । ॐ ह्रीं जलं०
संसार ताप[4] की ज्वाला में शीतलता पाने को ।
शान्त स्वभाविक चन्दन लाया पूज रचाने को ॥ मैं पूजूँ चन्दनं०
उत्तम अखण्ड अक्षत[5], अक्षयपद[6] पद पाने को ।
लाया हूँ शुद्ध जल से धोकर चरण चढ़ाने को ॥ मैं पूजूँ अक्षतं०
काम महा भयानक विष[7], जन्म जन्म दुखदाई ।
जिस के नष्ट करन को, उत्तम पुष्प मंगाई ॥ मैं पूजूँ पुष्पं० नि०
नाना विधि के स्वादिष्ट, शुद्ध पकवान ला कर ।
क्षुधा[8] नाश को पूजूँ, वीर प्रभु के सन्मुख आकर ॥ मैं पूजूँ नैवेद्यं०
मोह अन्धकार के कारण, सम्यक मुझे न हो पाया ।
तिस नष्ट करने को, ज्ञान दीप आन जलाया ॥ मैं पूजूँ दीपं०
आठों महा बली कर्म शत्रुओं के भगाने को ।
सुगन्धित अग्र[9] कपूर, लाया मैं जलाने को ॥ मैं पूजूँ धूपं० नि०
राग, द्वेष, इच्छा, विषय कषाय मिटाने को ।
अजर, अमर, मोक्ष के अमृत फल खाने को ॥ मैं पूजूँ फलं०

---

*पृष्ठ ४१ [1]सुख शान्ति के देवता [2]दूध [3]इच्छानुसार सुख देने वाले [4]दुख [5]चावल [6]मोक्ष [7]जहर [8]भूख [9]धूप ।

आठों दोष, आठों कर्म, आठों मद। खपाने को।
आठों गुण, आठों शुद्धि, आठवीं पृथ्वी पाने को ॥ मैं पूजूँ अर्घं०
५६ कुमारियाँ सेवा करें, कुबेर[1] बरसावे रतन।
गर्भ कल्याणक की भाव से, मैं करूँ पूजन ॥
ॐ ह्रीं असाढ़ सुदी छठ गर्भ मंगल मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ नि० स्वाहा
सुधर्म इन्द्र पाडुक शिला पर करें वीर नह्वन।
जन्म दिवस पूजने को, मैं आया वीर शरण ॥
ॐ ह्रीं चैत सुदी त्रयोदशी जन्म मंगल मंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ नि०स्वाहा
लोकांतिक देव[2] प्रशंसा करें, वीर के वैराग की।
तप कल्याण की मैं ने यहाँ शुभ पूजा रची ॥
ॐ ह्रीं मगसिर वदी दशमी तप मंगल मंडिताय[3] श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ नि०
घातिया[4] कर्म घात[5] कर, पाया केवल ज्ञान।
इसे जो पूजें भाव से पावें मोक्ष निदान ॥
ॐ ह्रीं वैशाख सुदी दशमी केवल ज्ञान प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घं नि०
इन्द्र, चक्री विधिपूर्वक, पूजें वीर निर्वाण।
मैं भजूँ भक्तिवश, मोक्ष दिवस अरु[6] मोक्ष स्थान ॥
ॐ ह्रीं कातिक वदी अमावस्या मोक्ष मंगल मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ

अभिनन्दन–जयमाल

धन्य है इस शुभ घड़ी को, जो तज कर मैं सब काम।
कहूँ जयमाल[7] श्री महावीर की करके शत शत[8] प्रणाम ॥
जय त्रिशला नन्दन आनन्द चन्दन जग वन्दन।
राग द्वेश भंजन[9] पाप विहंडन[5] मोह खंडन[5] ॥
आप कर्म-वीर[8] हो, सिद्ध चिन्ह[10] अति धीर हो।

---

[1]इन्द्र का खंजाची [2]ब्रह्म स्वर्ग के देव [3]शोभित [4]आत्मा के गुण नाशक [5]नष्ट [6]और [7]विशद गुण [8]१०० १०० [9]नाशक [10]ज्ञान का चिन्ह रखने वाले।

सुवीर[1] हो, महावीर[2] हो; दुनियां की धीर हो ॥
विष-नाग[3] बना अमृत, आप के प्रभाव में* ।
आज्ञाकारी बन गया, मस्त हाथी चाव में* ॥
त्याग कर सब राज ठाठ धन दौलत भोग भी ।
रह बाल ब्रह्मचारी*, भरी जवानी में दिक्षा[4] ली ॥
मिला दी दर्शनों से, चलिया की शंका को* ।
हजार आँख से देख, भी धर्म[5] तृप्त न था* ॥
बन्धन कटे चन्दना के, दर्शनों से आप के* ।
कोदे[6] हुए खीर*, मिट्टी के बरतन सोना बने* ॥
सब जीवों के हित में, विहार इतना किया ।
आज भी विहार थल[7], विहार प्रान्त कहला रहा ॥
नारकी[8] तिर्थंकर हुये, आपके गुण गान से* ।
दुष्ट[9] पापी तक तुरंत, मोक्ष के नेता बने* ।
उपासना के भाव में मेंढक पशु तक सुर[10] हुआ* ॥
अष्ट द्रव्य पूजक मनुष्य के मोक्ष में फिर क्या शुबा[11] ?
इस पंचम काल में भी, मन वांछित फलदायक हो ।
गवाले तक का प्रण निभाया, मेटा योवराज के संकट को ॥
यही चाहूँ आप से मैं जब तक न पाऊँ मोक्ष को ।
अरविन्द[12] जिनेन्द्र अर्हन्त दिगम्बर, मेरे हृदय में बसो[13] ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्ष प्रदाय पद प्राप्ताय महा अर्घं नि० स्वाहा

[1]इन्द्रियों को जीतने वाले [2]इच्छा जीतने वाले [3]जहर भरा सर्प [4]साधु बने [5]स्वर्ग का इन्द्र [6]बिना बोये स्वयं उगने वाले बहुत घटिया चावल [7]वह स्थान जहाँ अधिक भ्रमण करके उपदेश दिया [8]राजा श्रेणिक नरक आयु बन्ध करने पर भी वीर वन्दना से तिर्थंकर होंगे [9]सात मनुष्य प्रतिदिन मारने वाले अर्जुन माली आदि ने वीर प्रभाव से उनसे भी पहले मोक्ष पाया [10]स्वर्ग का देव [11]सन्देह [12]कमल समान वीतरागी जो जल में रहता हुआ भी जल से अलग है [13]वीतरागी नग्न कर्मनाशक जिनेन्द्र भगवान मेरे मन में विराजमान रहें *विस्तार के लिये हमारा लिखा 'श्री वर्द्धमान महावीर' देखिये ।

जो पूजें मन वच-काय से, श्री महावीर भगवान।
आपत्तियाँ सब स्वयं[1] मिटें, तुरन्त हो कल्याण ॥ (इति०)

महा अर्घ

मैं देव श्री अरहंत पूजूं सिद्ध पूजूं चाव सों ।
आचार्य श्री उवझाय पूजूं, साधु पूजूं भाव सों ॥
अरहंत भाषित[2] बैन[3] पूजूं, द्वादशांग[4] रचे[5] गनी[6] ।
पूजूं दिगम्बर गुरु चरण, शिव-हेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ भाषित[2] धर्म दश विधि दयामय पूजूं सदा ।
जजि[7] भावना षोडश[8] रत्नत्रय, जा बिन शिव[9] नहीं कदा ॥
त्रैलोक्य[10] के कृत्रिम[11] अकृत्रिम[12] चैत्य[13] चैत्यालय[14] जजूं[7] ।
पन[15] मेरु नंदीश्वर जिनालय[14] खचर[16] सुर[17] पूजित भजूं[7] ॥
कैलाश श्री सम्मेद श्री गिरनारगिर पूजूं सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा[18] ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूं बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस वसु, जय होय पति शिव गेह के ॥
जल, गंध, अक्षत पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल लाय ।
सर्व पूज्य पद पूजिये, बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

शान्ति पाठ

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव सुरपति चक्री करें ।
हम सारिखे लघु[19] पुरुष कैसे यथा विधि पूजा करें ॥
धन क्रिया ज्ञान रहित न जानें रीति पूजन नाथजी ।
हम भक्तिवश तुम चरण आगे जोड़ लीनो हाथजी ॥
दुख हरण मंगल करण आशा भरण जिन पूजा सही ।
यह चित्त में सरधान मेरे शक्ति है स्वयमेव[2] ही ॥

---

[1]हर प्रकार का दुख अपने आप मिटे [2]कही हुई [3]वचन [4]जिनवाणी [5]बनाई हुई [6]गणधर देव [7]पूजूं [8]१६कारण भावना [9]मोक्ष [10]तीनों लोक [11]बनाये हुये [12]अनादि [13]जिन बिम्ब [14]जिन मन्दिर [15]पांचों [16]विद्याधर [17]स्वर्ग के इन्द्र [18]हमेशा [19]अज्ञानी [2] मेरे अन्दर शक्ति है।

तुम मांगिते दातार पाये काज लघु जाचूँ[1] कहाँ ।
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी यही इक वाञ्छा मन ॥
संसार भीषण विपिन[2] में वसु कर्म मिल आतापियो ।
तिस दाहतैं आकुलित चित है शान्ति थल कहुँ न मिलयो ॥
तुम मिले शान्तिस्वरूप शान्ति करण समरथ जगपती ।
वसु कर्म मेरे शान्त करदो शान्तिमय पंचम गती ॥
जबलौं नहीं शिव लहूँ तबलौं देव यह धन पावना ।
सतसंग शुद्ध आचरण[3] श्रुत अभ्यास आतम भावना ॥
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रुलत जग जाल में ।
अब शरण आयो नाथ, दुहुँकर[4] जोड़ नावत भाल में ॥
कर प्रमाण[5] के मान में गगन[6] नपै किहिं भन्त ।
त्यों तुम गुण वर्णन करूँ कवि नहिं पावे अन्त ॥

विसर्जन

सम्पूर्ण विधि कर बीनऊँ[7] इस परम पूजन ठाठ में ।
अज्ञान वश शास्त्रोक्त विधि तैं चूक कीनीं पाठ में ॥
सो होहु पूर्ण समस्त विधि वश तुम चरण की शरण तैं ।
वन्दौं तुम्हें कर जोरिकै उद्धार जम्मन मरण तैं ॥
आह्वानन* स्थापन* तथा सन्निधिकरण* विधान जी ।
पूजन विसर्जन* यथाविधि जानूं नहीं गुणखान जी ॥
जो दोष लागो सो नशो सब तुम चरण की शरण तैं ।
वन्दौं तुम्हें कर जोरि कर उद्धार जम्मन मरण तैं ॥
तुम रहित आवागमन आह्वानन* कियो निज भाव में ।
विधि यथा क्रम निज शक्ति सम पूजन कियो अति चाव में ॥
करहुँ विसर्जन* भावही मैं तुम चरण की शरण तैं ।
वन्दौं तुम्हें कर जोरिकैं उद्धार जम्मन मरण तैं ॥
तीन भुवन तिहुँ काल में तुम सा देव न और ।
सुख कारन संकट हरन नमूँ युगल कर जोर ॥ (इतिविसर्जन)

---

[1]छोटी वस्तु क्या मांगू [2]भयानक जङ्गल [3]पवित्र आचरण [4]दोनों हाथ [5]नाप का पैमाना [6]आकाश [7]विनती *पृष्ठ ४१ ।

]

क्या—क्यों ?

१ मिथ्या दृष्टि के तो आस्रव और बन्ध होता ही है। संवर और निर्जरा का आरम्भ तो चौथे गुण स्थान से सम्यग्दृष्टि के ही होता है। सम्यग्दर्शन मेरा स्वाभाविक गुण है। मेरे अन्दर विद्यमान है। अन्दर ही झांकने से ऐसा अलौकिक आनन्द आता है कि तीन लोक की सम्पत्ति और चक्रवर्ती के भोग त्याग कर ज्ञानी आत्मध्यान में लीन हो जाता है तो फिर मैं थोड़े समय तक शरीर और कुटुम्ब की चिन्ता छोड़कर, "मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, अमूर्तिक हूँ ज्ञाता दृष्टा हूँ, शरीर आदि सब पर पदार्थों से भिन्न हूँ" ऐसा बार बार चिन्तवन करके अब सुखदायक सम्यग्दर्शन को क्यों न प्रगट करूँ ?

२ कम से कम एक बार भी सम्मेद शिखर जी की वन्दना करके नरक व पशुगति भ्रमण क्यों न मेटूं ? कहा भी है —

सम्मेद एक बार वन्दे जो कोइ। ताको नरक पशु गति न होई॥

३ बुरा भला तो कर्मानुसार होता है। दूसरा कोई नहीं कर सकता तो दूसरों का बुरा चाहकर पापबन्ध से मैं अपना बुरा क्यों करूँ ?

४ जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ उस पर चलने वाले सब मेरे साधर्मी हैं। धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रह सकता इसलिये धर्म से प्रेम करने वालों को धर्मात्माओं से प्रेम होता ही है। यदि ऐसा नहीं है तो यह समझो कि हम धर्मात्मा नहीं हैं। इसलिये हर समय सबसे प्रेम भाव क्यों न रक्खूँ ?

५ - ६ आवश्यक प्रतिदिन पालने से गेहूँ के साथ भूसे के समान संसारी सुख अवश्य मिलते हैं। यदि नहीं मिले तो समझो कि विधि में कहीं भूल हुई इसलिये इस ग्रन्थ का फिर विचारपूर्वक स्वाध्याय कर के अपनी भूल को मालूम कर उसे दूर क्यों न करूँ ?

सहारनपुर प्रिंटर्स, सहारनपुर में प्रथम बार १९६५ में मुद्रित।